बौद्ध में पर्यावरण चिन्तन

डॉ0 अनिल कुमार सिंह*

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है। जो मानव को परावृत्त करती है एवं उसके क्रियाकलापों को अनुशासित करती है एवं उसके क्रिया कलापों को अनुशासित करती है।[1] पर्यावरण जैसा कि इसे स्तरीकृत रूप में प्रकृति ने बनाया है में जैविक विविधता विद्यमान है। पर्यावरण को संतुलित और विकासोन्मुख बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि उसमें पायी जाने वाली समस्त प्रजातियों को अपने सम्यक भूमि को निभाने का अवसर मिलता रहे। इस संरचना जाने–अनजाने में कोई परिवर्तन करना या किसी प्रजाति का विलुप्त होना इसका उपभोग करने वालों पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। यही प्रतिकूल प्रभाव प्रदूषण है।[2]

भारतीय परम्परा चाहें वैदिक हो या श्रमण सभी सूर्य, नदी, वन, भूमि, पशु–पक्षी सभी को प्रकृति का उपहार मानते हैं। इन सभी की मूल सोच एवं भारतीय जनमानस की भावना प्राकृतिक संसाधनों को श्रद्धेय एवं सम्माननीय मानने की है। आम बोल–चाल की भाषा में यही सत्कर्म या पुण्य बन गया और पर्यावरण का विनाश दुष्कर्म या पाप बन गया। महात्मा बुद्ध की सोच भी इससे अलग नहीं थी। उनका भी मानना था कि पर्यावरण के प्राकृतिक साधन जितने स्वच्छ एवं निर्मल होंगे। हमारे जीवन और मन उतने ही स्वस्थ एवं स्वच्छ होंगे।

पालि साहित्य में प्रकृति को ज्ञान साधना के सहायक के रूप में देखा गया है। बुद्ध के जीवन में भी यही बातें देखने को मिलती है। यह कितने आश्चर्य की बात है और यह आकस्मिक भी नहीं है कि लुंम्बिनी के शाल वन में भगवान का जन्म, गया में पीपल के पेड़ के नीचे बुद्धत्व की प्राप्ति और कुशीनगर के दो शाल वृक्षों के नीचे उनका महापरिनिर्वाण–तथागत के जीवन की तीनों बड़ी घटनायें प्रकृति की खुली गोंद में, वृक्षों के नीचे ही हुई। प्रासादों में रहकर बुद्धों का निर्माण नहीं हो सकता, उनके लिए खुली वायु चाहिए।

*एसोसिएट प्रोफेसर (प्राचीन इतिहास) उदय प्रताप कालेज, वाराणसी

अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद अनेक स्थानों में घूमते हुए भगवान उरुबेला पहुँचे। उस स्थान के बारे में उन्होंने स्वयं कहा ''यह भूमिभाग रमणीय है, यह वनखण्ड प्रसन्नताकारी है, यहाँ श्वेत सुन्दर घाट वाली रमणीय नदी बह रही है। परमार्थ में उद्योगी कुलपुत्र के ध्यानरत होने के लिए यह स्थान उपयोगी है। ऐसा हम उन्हें कई बार कहते सुनते हैं। वन की शोभा ध्यानी भिक्षु से ही है। ऐसा भाव भगवान ने मज्झिमनिकाय में व्यक्त किया है।[3]

जिन–जिन वनों, वनखण्डों, पर्वत प्रदेशों, नदियों एवं पुष्करिणियों आदि के किनारे भगवान ने समय–समय पर निवास किया, उनकी सूची बनायी जाय तो विदित होगा कि भगवान का प्रायः सारा जीवन प्रकृति के बीच ही व्यतीत हुआ। किसी ग्राम या नगर में विचरण करते हुए भोजनोपरान्त पास के जंगल में ध्यान के लिए चले जाया करते थे।[4]

यहाँ हम उन कुछ आम्रवनों, शिशपावनों,मृगोपावनों और अन्य प्राकृतिक स्थानों का दिग्दर्शन करे जहाँ भगवान बुद्ध ने कुछ समय तक निवास किया। राजगृह एवं वैशाली के अनेक सुरम्य प्राकृतिक स्थानों का वर्णन स्वयं भगवान बुद्ध ने किया और उन्हें रमणीय बताते हुए अपने वहाँ निवास का भी उल्लेख किया है। गृंधकूट पर्वत, यष्टि वन उद्यान, ऋषभगिरि, वेभार, वेपुल्ल पब्ब्त राजगृह के उन अनेक स्थानों में से कुछ है जहाँ तथागत ने निवास किया था। वैशाली की महानवन कूटागारशाला को भला कौन भुला सकता है? कपिलवस्तु और वैशाली के महावन उनके प्रिय ध्यान स्थान थे। इसी प्रकार काशीराष्ट्र का अम्बाष्टक वन, वेदि जनपद का प्राचीन वंश मृगदाव, पारिलेय्यक वन, भद्दिक के जातियावन में भी उन्हें विहार करते हुए देखते हैं। साकेत के अंजन वन एवं कण्टकी वन वैशाली के अन्धवन को भी बुद्ध के चरणरज से पवित्र होने का अवसर मिला था। भग्ग राज्य का भेसकलावन, आलव कौशाम्बी व रोतव्य के सिंसपा वन तथा राजगृह किम्बिला व कजंगल के वेणुवन भी स्मरणीय है क्योंकि वहाँ तथागत ने विहार किया था। एक अन्य अवसर पर वे सीतावन में जो राजगृह के समीप एक श्मशान वन था। रात्रि के अंतिम प्रहर में घूम रहे थें अन्य अनेक वनों में जहाँ तथागत ने ध्यान किया मिथिला का मरवादेव आम्रवन, अनूपिया का आम्रवन, वज्जि जनपद के अवरपुर वनखण्ड और गोसिंग सालवन, उकट्ठा का सुभगवन, नलकपान के पलाशवन और केतकवन, कौशाम्बी के देववन एवं प्लक्षगुहा, चातुमाका आमलकी वन, कुण्डिय का कुण्डधान वन, ओपसाद का देववन नामक शाल वन आदि जाने कितने वन गिनाये जा सकते हैं।[5]

बौद्धधर्मानुसार अविद्या, लोभ, लालच, भोगविलास, रागद्वेष आदि दुःख के कारण हैं और इन सबका आदि कारण तृष्णा है। तृष्णा का नियंत्रण ही मनुष्य को

सुखी बना सकता है। धरती में असीम प्राकृतिक सम्पदा भरी रहती है परन्तु मनुष्य के अंदर बैठी हुई तृष्णा के कारण अमूल्य प्राकृतिक धरोहर का दोहन करने से धरती का आकार बदल जाता है और धरती अपनी सुगन्ध खोने लगती है।[6] तृष्णा से वशीभूत होकर आज मानव प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहा है। जिससे पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है। फलतः भगवान बुद्ध ने तृष्णा का समूल नाश करने की प्रेरणा दी।[7]

कुछ इसी प्रकार का विचार चरक का भी है। उन्होंने भी प्रदूषण के आन्तरिक कारकों को 'प्रज्ञापराध' कहा है। उनके अनुसार भी बुद्धि, धैर्य और स्मृति का भ्रष्ट या विसंतुलित होना ही विकृतियों का मूल कारण है।[8] मनुष्यों के 'प्रज्ञापराध' के कारण ही जनपदोंध्वंस होता है। जनपदों को महामारी, दुर्भिक्ष एवं पर्यावरणीय समस्यायें त्रस्त करने लगती है। यह अधर्म उच्च वर्ग प्रारम्भ करता है जो निम्नतर सोपानों से होता हुआ जन सामान्य को भ्रष्ट कर देता है।[9]

बौद्ध साहित्य के सिंगालोवादसूत्र के अनुसार एक गृहस्थ को मधुमक्खियों की तरह धन संचय करना चाहिए। जैसे–मधुमक्खियाँ फूलों को किसी भी तरह क्षति न करते हुए मधु का संग्रह करती हैं, उसी प्रकार मनुष्य को भी प्रकृति को क्षति न पहुँचाते हुए अपना जीवन धारण करना चाहिए।[10] यही बात धम्मपद में भी बतायी गयी है।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि बुद्ध के जिन 550 जन्मों का उल्लेख जातकों मेंहै, उनमें से 43 बार उन्होंने वृक्ष देवता के रूप में जन्म लिया है। बुद्ध को वृक्ष के नीचे बैठा देखकर सुजाता की दासी पूर्णा ने यह सोचा कि वृक्ष देवता प्रत्यक्ष दर्शन दे रहे हैं। यह बात उसने सुजाता से कही तो वह स्वर्णपात्र में खीर लेकर गयी जिसे बुद्ध ने ग्रहण किया।[11] इसी प्रकार थेरवाद में भिक्षुओं में से 100 निर्देश केवल पर्यावरण से सम्वद्ध है। महात्मा बुद्ध ने स्वयं कहा वन प्रकृति की ऐसी जीती–जागती देन है, जिसमें प्राणियों के लिए अपार दया, परोपाकारिता का आगार है। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि जो मनुष्य कुल्हाड़ी लेकर उन्हें काटने आता है, उसे भी वे सूर्य की गर्मी से बचाते हैं। आगे उन्होंने कहा है–

पत्र पुष्प फलच्छाया मूल वल्कल दारूभिः।
गंध निर्यास भमांस्थि तोक्यैः कामान्वितन्वते।।

अर्थात् पत्र, पुष्प, फल, छाया, जड़ छिलका, काष्ठ, गंध, गोंद एवं भस्म से संसार की सेवा करने वाले वृक्षों की जय हो।[12]

विनयपिटक में भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए भगवान ने कहा तृण, और वृक्ष आदि के गिरने से 'पाचितिय' का दोष लगता है। इसी प्रकार पेड़ काटने को गर्हित अपराध माना जाता है। बौद्ध संघ में यह निर्णय हुआ था कि ग्राम हो या

जंगल पेड़ काटना कठोर अपराध होगा। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर राजा की अनुमति लेकर पेड़ काटा जा सकेगा जिसके कारण समाज में भिक्षुओं की निन्दा नहीं होगी।[13] संयुक्तनिकाय (भाग–2, पृ0–23 एवं 47) के अनुसार वृक्ष की एक शाखा का भी बिना कारण छेदन नहीं करना चाहि जो जीवों को आवास प्रदान करता है। जातक कथाओं में वृक्ष को इतना महत्व दिया गया है कि वृक्षारोपण एवं उद्यान निर्माण को लोक बोधि प्राप्ति के समान फलदायी समझते थे। अंगुत्तरनिकाय (1/145) में समृद्ध नागरिक का लक्षण माना गया है कि उसके उपभोग के लिए उपवन हो।

विनयपिटक में वर्णन है कि छनन नामक एक भिक्षु ने कुटी बनवाते समय एक चैत्य वृक्ष कटवा दिया जिस पर जनपदवासियों ने दुःख प्रकट किया। अतः संघ में यह नियम बनाया गया कि ऐसे स्थान पर कुटी निर्माण में दोष माना जाय जहाँ किसी वृक्ष को काटना पड़े। एक प्रमाण से अधिक बड़ी कुटी बनवाने पर दोष माना जाय क्योंकि इससे प्राकृतिक सम्पदा के दुरूपयोग की सम्भावना पड़ती है। पातिमोक्ख के अनुसार वृक्षाद् को काटकर फेंकने एवं हरियाली को नष्ट करने पर 'पाचितिय' दोष लगता है।[14]

रूक्खधम्म जातक में वृक्ष देवताओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। कथा यह है कि शालवन में बोधिसत्ववृक्ष देवता के रूप में उत्पन्न हुए। शक्र ने वैश्रवण को उनका राजा बनाया। वैश्रवण ने वृक्ष देवताओं को आज्ञा दी किसी भी इष्ट वृक्ष पर अपने लिये स्थान चुन लें। बोधिसत्व ने अपने सगे– सम्बन्धियों को सलाह दी कि मिलकर रहो और आसपास के वृक्षों पर अपने लिये स्थान चुन लो, कुछ ने उनकी बात नहीं मानी। जंगल के अकेले वृक्षों पर जाकर रहने लगे। उसी समय आंधी आयी और अकेले वृक्ष उखड़ गये, जबकि वनखण्डी के समूह में खड़े वृक्ष बच गये। इस प्रकार बुद्ध ने उनसे मिलकर रहने का फल समझाया।[15]

इसी प्रकार एक अन्य जातक कथा में वर्णित है कि भगवान बुद्ध ने ऐसे जंगल में वृक्ष के रूप में जन्म लिया जिसमें बाघों की अधिकता थी, जो बुद्ध एवं उनके सम्बन्धियों के आस–पास का क्षेत्र में अपने मल–मूत्र तथा रक्त एवं मांस से प्रदूषित किये रहते थे। इससे क्रोधित होकर इनके वृक्ष सम्बन्धियें ने बुद्ध के मना करने पर भी उन्हें डराकर भगा दिया। फलतः कुछ दिन बाद लकड़ी काटने वाले निर्भय, जंगल में आये और उन पेड़ों को काटा डाला। इस कथा के माध्यम से वन संरक्षण में बाघों की आवश्यकता की ओर संकेत किया गया है। यही बात महाभारत के उद्योग पर्व में कही गयी है और हमारे आधुनिक पर्यावरणवादी भी नारा देते हैं कि ''जंगलों को बचाना है तो बाघों को बचाइये।''

बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित अहिंसा को पृथ्वी की जैव विविधता को बचाये रखने के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए।

गौतम बुद्ध ने लक्ष्य करके तथा विशेष रूप से उन वैदिक यज्ञों की आलोचना की जिनमें पशुबलि दी जाती थी। सुत्तनिपात के ब्राह्मण धम्मिक सुत्त की एक कथा के माध्यम से बुद्ध उपदेश देते हैं कि पशुओं की रक्षा होनी चाहिए।[16] माता, पिता, बंधु तथा अन्य रिश्तेदारों की भाँति पशु हमारे मित्र हैं और उन्हीं की वजह से पौधे विकसित होते हैं। वे भोजन, शक्ति, सौन्दर्य एवं प्रसन्नता देने वाले हैं।[17] इससे स्पष्ट है कि पशुधन पर कृषि निर्भर थी। पशुरक्षा पर बल दिया जाना ऐसे में निश्चित रूप से क्रांतिकारी उपदेश था, जब भोजन एवं धर्म दोनों के लिए पशु हत्या की जाती थी।

बुद्धरचित में उन्होंने कहा दयावान सज्जन के लिए फल की इच्छा से, अन्य विवश जीव को मारना उचित नहीं। यदि यज्ञ का फल शाश्वत भी हो तो भी या उस फल के लिए ऐसा करना चाहिए।[18]

धर्मका, स्वर्गप्राप्ति का या देवताओं की प्रसन्नता का पशु हिंसा से भला क्या सम्बन्ध होसकता है।[19] बीमारियों से भरे एक नाशवान शरीर के लिए प्राणियों के प्रति इतनी निर्दयता? अहो इस प्रकार के अज्ञान को धिक्कार है।[20]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धधर्म में आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के प्रदूषण को समाप्त करने का उपदेश दिया गया हैं मानव के आन्तरिक प्रदूषण का कारण यदि अविद्या या तृष्णा है तो पर्यावरणीय प्रदूषणका कारण भी मानव की तृष्णा या भोग की प्रवृत्ति है। अगर मानव इस प्रवृत्ति से मुक्त हो जायेगातो न केवल आन्तरिक प्रदूषण समाप्त होगा बल्कि पर्यावरण भी शुद्ध होगा। महात्मा बुद्ध के उपदेशों की सफलता भी यही है।

संदर्भ

1. पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रबन्ध, प्रो0 रामआसरे चौरसिया, पृ0 1.
2. विज्ञान तकनीकी एवं पर्यावरण–2001,संपा0 प्रेमचन्द श्रीवास्तव, पृ0–40.
3. बोधिवृक्ष की छाया में–भरत सिंह उपाध्याय, पृ0–87.
4. अंगुत्तरनिकाय, तिक निपात।
5. बोधिसत्व की छाया में –भरत सिंह उपाध्याय, पृ0–88–89.
6. Digha NIkay.Vol. III, p. 30, Devide J.L. Carpenter, London
7. नन्दी सराजनी लोको, वितकस्स विचारणं तष्टाय विष्पेधनेन, निब्बानं रति बुच्छती ति।। संयुक्तनिकाय, 1/37.
8. चरक संहिता, शरीर स्थान, 1/102
9. वही, विमान स्थान, 3/23.
10. सिंगोलावादसुत, भाग–3, पृ0–188.

11. प्राचीन भारतीय लोकधर्म, वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ0–77.
12. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालिदास की वनस्पतियाँ, डॉ0 मायाराम उनियाल, पृ0–55
13. पातिमोक्ख–07.
14. धर्म एवं पर्यावरण, पृ0–215, नरेन्द्र कुमार दास का शोध–पत्र।
15. प्राचीन भारतीय लोकधर्म, वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ0–77.
16. सुत्तनिपात,ब्राह्मणधम्मिक सुत्तम–12, पृ0–74
17. यथा माता पिता भाता अञञेवापि च ञाटका गावो नो परममित्ता यासु जयन्ति ओसधा, अन्नदा बलदा चेता वन्नदा सुखदा तथा, वसम् जत्वा नास्सु गावो हनिम्सुते। सुत्तनिपात 13.13.
18. परहि हतुं विवश फलेप्सया न युक्तरूपं करूणात्मनं सतः।
    क्रतो फलं यद्यापि शाश्वतं भवेत्तथापि कृत्वा किमु यत्क्षयात्मकम्।।
    बुद्धचरितं– 11.65.
19. को हि नामाभिसम्बन्धो धर्मस्थ पशुहिंसया।
    सुरलोकाधिवासस्य दैवतप्रीणनस्य वा।। जातक माता, 10.10
20. देहस्यै कस्य नामर्थे रोग भूतस्य नाशिनः।
    इदं सत्त्वेषु नैघृण्यं धिगहो बत मूढताम्।। जातक माला, 30.13.

****